© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

काव्य में करूणादि रसों का आस्वाद

देवी प्रसाद गुप्त,
शोधछात्र, संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य का प्रयोजन रस है[1] जिससे सहृदय को श्रृंगार, हास्य, वीर, अद्भुत और शान्त रसों के द्वारा तो आस्वाद प्राप्ति होती है, साथ ही वह करूण भयानक, रौद्र और वीभत्स रसों द्वारा भी आस्वाद प्राप्त करता है। अतः संस्कृत के कतिपय आचार्यों ने रस को सुख–दुःखात्मक कहा है।[2] इसका अभिप्राय यह है कि श्रृंगार आदि रस सुखात्मक हैं और करूणादि रस दुःखात्मक। करूणादि रसों को दुःखात्मक स्वीकार करने के सम्बन्ध में आचार्य वामन द्वारा उद्धृत यह कथन उल्लेखनीय है कि करूण रस के नाटकों में सुख–दुःख का सम्प्लव सहृदयों के अनुभव द्वारा सिद्ध है।[3]

करूण आदि रसों को दुःखात्मक स्वीकार करने वाले आचार्यों में आचार्य रामचन्द्र–गुणचन्द्र ने सर्वाधिक एवं विवेचनात्मक सामग्री प्रस्तुत की है इस सम्बन्ध में उनके चार तर्क हैं[4] जिनका सार इस प्रकार है।

1. करूणादि रसों द्वारा सहृदय उद्विग्न होते हैं और अवर्णनीय क्लेश दशा तक जा पहुँचते हैं। सीता का हरण, ,द्रौपदी का चीर–हरण, हरिश्चन्द्र की चाण्डाल के यहाँ दासता रोहिताश्व की मृत्यु, शैव्या का विलाप ये भला किसे सुखास्वाद दे सकते हैं।
2. कवि–जनकाव्य–नाटक में लोग का यथावत् अनुकरण प्रस्तुत करते हैं–'लोकानुकृतिर्नाटयम्', अतः हमे सुखी अनुकार्य में सुख मिलता है और दुःखी अनुकार्य से दुःख। यदि दुःखी अनुकार्य से भी हमें सुख मिलेगा तो काव्य –नाटक में यह स्थिति लोक–विपरीत समझी जाएगी।
3. दुःख सन्तप्त अथवा विरही व्यक्ति जब करूणादि वर्णन सुनते या पढ़ते हैं अथवा अभिनीत रूप में देखते हैं तो उन्हें सहानुभूति सी, सुख–सान्त्वना सी मिलती है। इस दृष्टि से करूणादि रसों को सुखात्मक मानना चाहिए– किन्तु सुखवादियों का यह सहानुभूति मूलक तर्क उचित नहीं है। वस्तुतः ये दुःखी व्यक्ति अपनी सामान्य स्थिति में नहीं होते। इसका यही प्रमाण है कि इन्हें प्रमोदपूर्ण वार्ताओं से दुःख मिलता है। सत्य तो यह है कि उपर्युक्त सुख सांत्वनामूलक आस्वाद भी मूलतः दुःखात्मक ही होता है।

4. इस प्रकार यद्यपि करूणादि रस दुःखात्मक है, फिर भी यदि इनसे सहृदय परमानन्द को प्राप्त करते हैं तो कवि एवं नट की कुशलता से चमत्कृत होकर ही, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वीर पुरुष अपने प्राण घातक शत्रु को भी देखकर आश्चर्य चकित से रह जाते हैं, जो प्रहार करने में अत्यन्त निपुण होता हैं वस्तुतः शत्रु के समान हृदय–विदारक करूणादि रस भी दुःखात्मक होते हैं।

उक्त चारों तर्कों पर यदि गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो इनके मूल मे एक ही भ्रान्त धारणा सन्निहित है कि लौकिक व्यवहार और कवि–कृति में कोई अन्तर नहीं हैं पहले तर्क में लौकिक व्यक्ति के समान सहृदय को भी उद्विग्न समझ लिया गया है और दूसरे तर्क में लोकगत और काव्यगत विषयवस्तु को भी एक ही समझ लिया गया है किन्तु जैसा कि हम आगे देखेगें कि इन दोनों तर्को की स्थितियाँ नितान्त भिन्न हैं तीसरे तर्क में प्रस्तुत दुःख सन्तप्त व्यक्ति का उदाहरण लौकिक स्तर पर तो घटित होता है किन्तु काव्य–नाटक पर हीं। उदाहरणार्थ, किसी व्यक्ति को काव्य–पठन अथवा नाटक प्रेक्षण के समय यदि अपने किसी वियुक्त अथवा मृत आत्मीय जन की स्मृति जिस क्षण हो आती है, तो उस क्षण वह व्यक्ति सहृदय न कहा जाकर लौकिक व्यक्ति ही कहलाता है। चौथे तर्क का आधार भी लौकिक ही है। कवि तथा नट के कौशल जन्य चमत्कार से उनकी प्रतिभा को प्रतिप्रेक्षक के हृदय में आश्चर्य, आदर, श्रद्धा आदि का भाव उदय होता है जो स्वयं लौकिक है और परवर्ती रसास्वाद का उद्दीपक कारण बनता है। अस्तु!

बस केवल इन कतिपय आचार्यों की मान्यता को छोड़कर भारतीय काव्य शास्त्र में करूणादि रसों को सुखात्मक स्वीकार किया गया है। इस सम्बन्ध में निम्नोक्त तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं–

1. करूणादि रसों की सुखात्मकता का प्रमाण सहृदयजनों का इन रसों के द्वारा सुख प्राप्त करना, अन्यथा वे इन रसों के निष्पादन काव्य नाटक आदि की ओर उन्मुख न होते।[5] ऐसा प्रतीत होता है मानों आचार्य वामन द्वारा उद्धृत तर्क[6] के उत्तर में यह कथन कह दिया गया हो, किन्तु वस्तुतः यह तर्क प्रबल नहीं है।
2. जिस प्रकार पानक 'खट्टे–मीठे–तीखे पेय,' का स्वाद दुःख स्वादजनक तीक्ष्ण पदार्थों के मिश्रण से और भी अधिक सुखास्वाद प्रदान करता है, उसी प्रकार करूणादि रसों में भी दुःख का मिश्रण सुखास्वाद प्रदान करता है। निःसन्देह यह तर्क भी बहुत अधिक प्रबल नहीं है।
3. लोकिक विषय वस्तु काव्य अथवा नाटक का रूप ग्रहण कर लेने पर लोकोत्तर बन जाती है–अब उससे विभिन्न अंगों को कारण कार्य सहकारी कारण न कहा जाकर क्रमशः विभाव, अनुभाव और संचारी भाव कहा जाता है। जब तक शोक, भय लौकिक कारण आदि से सम्पृक्त हैं 'चाहे वह घटना नाट्यगृह में भी क्यों न हो,' तब तक वे भाव निःसन्देह दुःखात्मक हैं किन्तु विभावादि से सम्पृक्त होने के कारण वे शोक भय आदि भाव करूण, भयानक आदि रसों में अभिव्यक्त हो जाते हैं। यह स्थिति तब सम्भव होती है, जब सहृदय में सत्व का उद्रेक होता है।

4. उक्त मान्यता की सिद्धि के लिये साधरणीकरण व्यापार एक तत्व है।[7] जिसके बल पर सहृदय के समक्ष किसी विशेष देश, काल, व्यक्ति आदि से असम्पृक्त घटना–चक्र आता है, इसमें से लौकिक दंश निकल जाता है। अतः सहृदय स्वयं भी निजत्व और परत्व की भावना से विमुक्त हो जाता है, परिणामतः उसे सुख अर्थात् काव्यानन्द ही मिलता है।

किन्तु इन चारों तर्कों के बाद भी यह शंका बनी रहती है कि करूण भयानक, रौद्र आदि रसों में से दुःख की प्रतीति बनी रहती है, उसका समाधान क्या है? वस्तुतः यही शंका श्रृंगार आदि रसों के सम्बन्ध में भी की जा सकती है। इस शंका का समाधान भी 'साधारणीकरण' व्यापार ही प्रस्तुत करता है, किन्तु विलोम रूप में जिन क्षणों में हमारी दृष्टि में विशेष घटना चक्र साधारण रूप नहीं ग्रहण कर पाता उन क्षणों मे या तो वास्तविक अनुकार्यों का ज्ञान बना रहता है, अथवा तत्सदृश लौकिक व्यक्तियों का, विशेषतः अपने परिजनों का ध्यान आ जाता है। इस स्थिति में हम लौकिक व्यक्ति के समान न कि सहृदय के समान श्रृंगार आदि रसों में लौकिक सुख और करूणादि रसों में लौकिक दुःख को प्राप्त करते हैं, किन्तु जिस क्षण साधरणीकरण व्यापार के बल पर विशिष्ट घटना चक्र साधारण रूप ग्रहण कर लेता है, हम निजत्व–परत्व की भावना से परे उठ जाने के कारण काव्यानन्द प्राप्त करने लगते हैं और पूर्ववर्ती क्षण अर्थात् श्रृंगार आदि रसों में लौकिक सुख के क्षण और करूणादि रसों में लौकिक दुःख के क्षण, इस काव्य–सुख के उद्दीपक कारण माने जा सकते हैं। कहना चाहें तो यह कह सकते हैं कि श्रृंगार आदि रस सुख–सुखात्मक होते हैं। और करूणादि रस दुःख–सुखात्मक अर्थात् अन्ततः दोनों प्रकार के रस सुखात्मक ही हैं।

लगभग इसी प्रकार की मान्यता आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने प्रस्तुत की थी–'सभी रसों से यों तो सुख का अनुभव होता है, परन्तु यह अनुभव सब रसों में तुल्य रूप से नहीं होता है, उसमें सुख–दुःख का तारतम्य बना रहता है। इसका कारण यह होता है कि 'काव्य के क्षेत्र में' सत्व गुण में रजोगुण और तमोगुण के अंश का मिश्रण सदा रहता है–सत्त्व गुण सुख स्वरूप होता है[8] और शेष दो गुण दुःखरूप। आचार्य मधुसूदन सरस्वती की उक्त मान्यता करूणादि रसों पर विशेष रूप से घटित होती है, यद्यपि वे भी इसे अन्ततः सुखात्मक ही स्वीकार करते हैं।

निष्कर्षतः करूणादि रसों का आस्वाद दुःखात्मक नहीं है। वे भी श्रृंगार आदि रसों के समान सुखात्मक हैं।

संदर्भ सूची

1. नहि रसादृते कश्चिद्प्यर्थ प्रवर्तते। नाट्यशास्त्र–3.12 की वृत्ति
2. (क) अभिनव भारती (आचार्य विश्वेश्वर) भाग 1, पृष्ठ 278
   (ख) रसकलिका (रूद्र भट्ट) : नम्बर आफ रसज् (डॉ0 वी0 राघवान), पृष्ठ 155
   (ग) भोजस् श्रृंगार प्रकाश द्वितीय भाग (डॉ0 वी0 राघवन), पृष्ठ 369
3. करूणप्रेक्षणीयेषु सम्प्लवः सुखदुःखयोः। काव्यालंकार सूत्रवृत्ति। 3.1.9 (वृत्ति)
4. नाट्यदर्पण (आचार्य विश्वेश्वर), पृष्ठ 291–92
5. करूणादावपि रसे जायते यत्परं सुखम्।
   सचेतसामनुभवः प्रमाणः तत्र केवलम्।।
   किं च तेषु यदा दुखं कोऽपिस्यात्तदुन्मुखः।
   तथा रामायणादीनां भविता दुःखहेतुता।। साहित्यदर्पण 3.4.5.
6. करूणप्रेक्षणीयेषु सम्प्लवः सुखदुःखयोः– काव्यालंकारसूत्रवृत्ति 3.1.9 (वृत्ति)
7. काव्ये नाट्येच., निबिडनिजमोहसंकटता–निवारणकारिणा, विभावादिसाधारणीकरणात्मणा, अभिधातों द्वितीयेन अंशेन, भावकत्वव्यापारेण भाव्यमानों रसः .....। हिन्दी अभिनवभारती, पृष्ठ 464–465
8. सत्त्वगुण सुखरूपत्वात् सर्वेषां भावानां सुखरूपत्वेऽपि रजस्तमोंशमिश्रवात् तारतम्यमवन्यव्यम् अतो न सर्वेषु तुल्यसुखानुभव। नम्बर ऑफ रसस्, वी0 राघवन, पृष्ठ 256